आचार्य नेमिचन्द्रसूरि और उनके ग्रन्थ

□ **श्री हुकमचन्द जैन**, शोध छात्र, जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग,
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर

प्राकृत कथा साहित्य में संघदास एवं धर्मदास गणीकृत वसुदेवहिण्डी, हरिभद्रसूरिकृत समराइच्चकहा एवं धूर्ताख्यान, उद्योतनसूरिकृत कुवलयमाला, जिनेश्वरसूरि द्वारा निर्वाण लीलावती कथा तथा कथाकोशप्रकरण, जिनचन्द्रकृत संवेगरंगमाला, महेश्वरसूरिकृत णाणपंचमीकहा, देवभद्रसूरि या गुणचन्द्र का कहारयणकोश, महेन्द्रसूरिकृत नखमयासुन्दरीकहा, सोमप्रभसूरीकृत कुमारपाल-प्रतिबोध आदि कथाएँ लिखी गयी हैं। प्राकृत साहित्य में विभिन्न कथाकार हुए हैं उनमें नेमिचन्द्रसूरि प्रसिद्ध कथाकार एवं चरित साहित्य के रचयिता हुए हैं।

गुरु-परम्परा—आचार्य नेमिचन्द्रसूरि चन्द्रकुल के बृहद्गच्छीय उद्योतनसूरि के प्रशिष्य और आम्रदेव उपाध्याय के शिष्य थे। आचार्य पद प्राप्त करने के पहले इनका नाम देवेन्द्रगणि था। ये मुनि चन्द्रसूरि के धर्म-सहोदर थे।[1]

उत्तराध्ययन की सुखबोधा टीका की वृत्ति के अन्त के प्रशस्ति-वर्णन में नेमिचन्द्र के गच्छ गुरु, गुरुभ्राता आदि का उल्लेख है।[2]

आख्यान मणिकोश की प्रस्तावना में इनकी गुरु-परम्परा का उल्लेख मिलता है। किन्तु अधिक स्पष्ट गुरु-परम्परा वर्णन रयणचूड़चरियं में मिलता है। रयणचूड़ में वर्णित गुरु-परम्परा प्रशस्ति की मूल गाथाओं के निम्नांकित अनुवाद से ग्रन्थकार की गुरु-परम्परा अधिक स्पष्ट हो जाती है।[3]

पालन करने में कठिन शील के सभी अंगों और गुणों की धुरा को धारण करने वाले तथा हमेशा विहार करने में प्रयत्नशील श्री देवसूरि हैं।[4]

पट्टधर पृथ्वीमंडल पर प्रसारित निर्मल कीर्ति वाले विमलचित्त, कठिनता से धारण किये जाने वाले श्रमण के गुणों को ग्रहण करने में धुरन्धर भाव को प्राप्त तथा सौम्य शरीर एवं सौम्य दृष्टि वाले श्रीउद्योतनसूरि हुए।[5]

---

१. (अ) श्रीबृहद्गच्छीय श्रीउद्योतनसूरिप्रवरशिष्योपाध्याय श्रीआम्रदेवस्य शिष्याः प्रथमनाधेय श्रीदेवेन्द्रगणिवराः पश्चादाप्त सूरिपदेन श्रीनेमिचन्द्रनामधेय सूरिप्रवराः श्रीमुनि चन्द्रसूरिधर्मसहोदराः।
—विशेष—रयणचूडचरियं की प्रस्तावना, संशोधक—विजयकुमुदसूरि, १९४२ ई०
(ब) प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३४६, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रथम संस्करण, १९६६ ई०

२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ३, डॉ० मोहनलाल मेहता, पृ० ४४७, पी० वी० शोध संस्थान, वाराणसी, १९६७ ई०

३. आख्यान मणिकोश, नेमिचन्द्रसूरि, प्राकृत ग्रन्थ परिषद, वाराणसी, १९६२ ई० हिन्दी प्रस्तावना, पृ० ६ "३"

४. आसिसिरिदेवसूरि, दुव्वहसोलंग गुणधुराधरणो।
उज्जयविहारनिरओ, तगच्छे तयणं संजाओ ॥ ६ ॥—र० चू०,

५. (क) सिरिनेमिचन्द्रसूरि, कोमुइचंदाव्व जणमणणंदो।
तयण महिवलय पसरिय निम्मल कित्तो विमलचित्तो ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म की तरह मुक्ति के मंत्र स्वरूप चरणकमलों की धूल से अज्ञानरूपी तम समूह को नष्ट करने वाले सूर्य की तरह तप-तेज-युक्त जसदेवसूरि थे।[१]

अपने रूप से कामदेव को जीतने वाले तथा मन से सकल गुणों के धारक तथा समस्त लोगों को आनन्दित करने वाले प्रद्युम्नसूरि हुए।[२]

सघन बुद्धि के द्वारा दुर्गम काव्यों को जानने वाले तथा आत्मा की तरह शास्त्रों को जानने वाले एवं मदरूपी कामदेव को खण्डित करने वाले आचार्यप्रवर मानदेव थे।[3]

श्रेष्ठ कीर्ति फैलाने वाले, मनोहर शरीरधारी, महामति कुशल, दर्शन मात्र से जिनेन्द्र प्रवचनों में प्रविष्ट लोगों को आनन्दित करने वाले, श्रेष्ठ शास्त्रों के अर्थ को प्रकट करने वाले, सरस्वती के समान मुख में स्थित कुशल वचनों वाले तथा समस्त लोक में विख्यात श्रीदेवसूरि थे।[४]

उनके ही गच्छ में उद्योतनसूरि के श्रेष्ठ शिष्य तथा गुणरत्नों के खजाने उपाध्याय अंबदेव हुए।

पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल की तरह सौम्य शरीर एवं संयमित चित्त के धारी श्रेष्ठ मति वाले मुनि चन्द्रसूरि के धर्म-सहोदर देवेन्द्रगणि के द्वारा उनकी अनुमति से उनसे शिष्य के शब्दों द्वारा संक्षेप में अक्षरबन्ध (कथा) के रूप में यह कथा कही गयी है।

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्रसूरि की गुरु-परम्परा निम्न प्रकार स्पष्ट होती है :

देवसूरि

उद्योतनसूरि | जसदेवसूरि | प्रद्युम्नसूरि | मानदेवसूरि

उद्योतनसूरि
उपाध्याय अंबदेव
देवेन्द्रगणि (नेमिचन्द्रसूरि)

सबसे प्रथम देवसूरि हुए। देवसूरि के ४ शिष्य हुए—उद्योतनसूरि, जसदेवसूरि, पद्युम्नसूरि, आचार्य मानदेव-सूरि। ये चारों समकालीन थे।

उद्योतनसूरि के उपाध्याय अंबदेव हुए। अंबदेव के देवेन्द्रगणि (नेमिचन्द्रसूरि) हुए थे।

(ख) समणगुणदुव्वहधरा धारण धोरेय भावमणुपत्तो।
सिरिउज्जोयणसूरि सोमत्तणु सोमदिट्ठी व॥ ८॥

१. धम्मोव्व मुत्तिमंतो पयपंकयरेणुनासिय तमोहो।
जसदेवसूरिनामो, रविव्व तवतेयला जुत्तो॥ ९॥

२. दूर विणिज्जयमवणो स्वेण, मणेण सयलगुणनिलओ।
आणंदियसयलजको पवरो पज्जुन्नसूरिवरो॥ १०॥

३. निविडइमुणियदुग्गमकव्वो जोवोव्व नायसत्थत्थो।
मुसुमूरियमयमयणो, सूरवरो माणदेवोत्ति॥ ११॥

४. उद्दाम कित्तिसद्दो मणहरदेहो महामई कुसलो।
दंसणमेत्ताणंदियजिणपदयणपविट्टलोगोवि॥ १२॥
पयडियवरसत्थत्थो मुहट्टियसरस्सइव्व पडुवयणो।
सिरिदेवसूरिणामो समत्थ लोगंमि बिक्खाओ॥ १३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद देवेन्द्रगणि के किसी शिष्य का उल्लेख नहीं मिलता है। इस गुरु-परम्परा का स्पष्टीकरण पं० मुनिश्री पुण्यविजयजी ने भी किया है, जो अनन्तनाथचरित्र की प्रशस्ति[1] एवं आख्यानमणिकोश की प्रशस्ति[2] के आधार पर है।

ग्रन्थकार का लाघव—देवेन्द्रगणि ने अपनी गुरु-परम्परा के उपरान्त अपना लाघव प्रकट करते हुए इस प्रकार मंगलाचरण किया है—

विद्वानों को आनन्द देने वाले तथा अन्य कथाओं के उपस्थित रहने पर भी यह जानते हुए कि विद्वानों के लिए यह कथा हास्य का पात्र होगी।[3]

क्योंकि कलहंस की गति के विलास के साथ निर्लज्ज कौए का संचरण इस संसार में निश्चित रूप से हास्य का पात्र होता है।[4]

किन्तु ये सज्जन रूपी रत्न हास्य के योग्य वस्तुओं पर भी कभी नहीं हँसते हैं। अपितु गुणों के आराधक होने के कारण उसकी प्रशंसा करते हैं।[5]

केवल इस बल के कारण से काव्य के विधान को न जानते हुए उनका अनुसरण करने के लिए मैंने काव्य का अभ्यास किया हैं।[6]

उनका अनुग्रह मानते हुए गुणों से रहित इस कथा को दक्षिण समुद्र जैसे सज्जन लोग सुनें और ग्रहण करें तथा इसके दोष समूह का संशोधन कर दें।[7]

प्रद्युम्नसूरि के शिष्य धर्म के जानकार एवं सज्जनता के साथ जसदेवगणि के द्वारा इसकी प्रथम प्रति उद्धृत की गयी है।[8]

यद्यपि उपर्युक्त मंगलाचरण में कवि ने अपना लाघव प्रकट किया है, किन्तु उनके ग्रन्थों के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि वे बहुत बड़े कवि और विद्वान् कलाकार थे।

समय एवं स्थान—आचार्य नेमिचन्द्रसूरि (देवेन्द्रगणि) का समय विक्रम की १२वीं शती माना जाता है। इनकी प्रथम रचना आख्यानमणिकोश एवं अन्तिम रचना महावीरचरियं मिलती हैं जो क्रमशः लगभग वि० सं० ११२९ एवं वि० सं० ११४९ में लिखी गयी हैं।

---

१. अनन्तनाहचरियं (अप्रकाशित) की गाथा नं० १-१८ उद्धृत, आ० म० को० भूमिका, पृ० १२-१३

२. आख्यानमणिकोश प्रशस्ति, पृ० २६९

३. आणंदियाविउसासु अन्नासु कहासु विज्जमाणिसु।
एसा हसठाणं जणंतेणावि विउसाण ॥ १७ ॥

४. कलहंसगइविलासेण संचरंतो हु घट्टबलिपुट्ठो।
हासट्ठाणं जायइ जणंमि निस्संसयं जेण ॥ १८ ॥

५. किंतु इह सुयण रयणा हासोचिवयमवि हसंति न कयाइ।
अविय कुणंति महग्घं गुणाणामारोहणेत्थ ॥ १९ ॥

६. इह बलिवकारेणं कव्वविहाणंमि जायवसणेण।
कव्वभासो विहिओ (एसा कहिया रइया) तेणपाणोणु सरणत्थं ॥ २० ॥

७. ताणुग्गहं कुणंता, सुणंतु गिण्हंतु निग्गुणिम्पि इमं।
सोहंतु दोसजालं दक्खिण महोयहो सुयणा ॥ २१ ॥

८. पज्जुन्नसूरिणो धम्मनतुएणं तु सुणणु साणिणं।
गणिणा जसदेवेणं उद्धरिया एत्थ पढमपई ॥ २३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन दोनों ग्रन्थों का शताब्दियों से अनुमान लगाया जाता है कि इनका समय एवं रचनाकाल विक्रम सं० १२वीं शताब्दी रहा है।[1]

आचार्य नेमिचन्द्रसूरि कहाँ के रहने वाले थे, इसके सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण इनकी रचनाओं में नहीं मिलते हैं। केवल इनकी रचना रयणचूड़चरियं की प्रशस्ति में यह संकेत दिया गया है कि यह रचना डिंडिलपद निवेश में प्रारम्भ की थी तथा चड्डावलीपुरी में समाप्त की थी।[2]

चड्डावलीपुरी को आजकल चन्द्रावती कहते हैं। उत्तराध्ययन की सुखबोधा टीका अणहिलपाटन नगर में लिखी गयी जो गुजरात में है। तुर्क (गजनवी) ने गुर्जर देश पर आक्रमण किया था। सोमनाथ मन्दिर को लूटा था। विमलमंत्री ने आबू के जैन मन्दिर के निर्माण के साथ चन्द्रावती नगरी को भी बसाया था। आबू के जैनमन्दिर का निर्माण काल भी वि० सं० १२वीं शताब्दी है। अतः कवि का कार्यक्षेत्र गुजरात एवं राजस्थान रहा है।[3]

प्रमुख रचनायें—नेमिचन्द्रसूरि की छोटी-बड़ी पाँच रचनायें हैं[4]—

१. आख्यानमणिकोश, २. आत्मबोधकुलक अथवा धर्मोपदेशकूलम्,
३. उत्तराध्ययनवृत्ति, ४. रत्नचूड़ कथा,
५. महावीरचरियं

पाँच कृतियों के अतिरिक्त अन्य कोई कृति उन्होंने नहीं लिखी। उनकी रचनाओं का आख्यानमणिकोश के वृत्तिकार आम्रदेवसूरि अपनी प्रशस्ति में[5] और आम्रदेवसूरि के शिष्य नेमिचन्द्रसूरि भी अपनी अनन्तनाथचरित की प्रशस्ति में[6] उल्लेख करते हैं। किन्तु ये दोनों आचार्य आत्मबोधकुलक का उल्लेख नहीं करते हैं। सम्भवतः मात्र २२ आर्याछन्द में रची गयी यह लघुतम कृति उनकी दृष्टि में साधारण सी रही हो। अतः दोनों ने उसे उल्लेख योग्य न समझा हो। आख्यानमणिकोश की अन्त्य गाथा का उत्तरार्द्ध और आत्मबोधकुलक की अन्त्यगाथा के उत्तरार्द्ध को देखते हुए ऐसा फलित होता है कि दोनों का कर्त्ता एक ही होना चाहिए। इसलिए इस लघु कृति को भी उनकी लघु कृतियों में शामिल किया है।[7] नेमिचन्द्रसूरि (देवेन्द्र गणी) के प्रमुख ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार प्राप्त होता है—

---

१. जैन साहित्य का बृहद इतिहास, भाग-५, गुलाबचन्द चौधरी, पी० वी० शोध संस्थान, वाराणसी, पृ० ६२.

२. डिंडिलबद्धनिवेसे पारद्धा संठिएण सम्मता।
चड्डावलिपुरोए एसा फग्गुणचउमासे॥
—रयणचूड पृ० ६७ संशोधक विजयकुमुदसूरि, १६४२, प्रकाशक—तपागच्छ जैन संघ, खंभात १६४२.

३. जैन साहित्य नो इतिहास : मोहनलाल दलीचंद देसाई, प्रकाशक—जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स, बोम्बे, १६३३ ई०, पृ० ३३१, टीका नं० ३६२.

४. आख्यानमणिकोश की प्रस्तावना, पृ० ७, संशोधक—मु० पुण्यविजयजी, प्राकृतग्रन्थ परिषद, वाराणसी, १६६२ ई०

५. श्री नेमिचन्द्रसूरियः कर्त्ता प्रस्तुतप्रकरणस्य।
सर्वज्ञागमपरमार्थवेदिनामग्रणीः कृतिनाम्॥
अन्यां च सुखवागमां यः कृतवानुत्तराध्ययनवृत्तिम्।
लघुवीरचरितमथ रत्नचूडचरितं च चतुरमतिः॥ पृ० ३७६

६. सिरिनेमिचन्द्रसूरि पढमो तेरियं न केवलाणं पि।
अवराण वि समय सहस्सदेसयाणं मुणिदाणं॥
जेण लहुवीरचरियं रइयं तह उत्तरज्झयणवित्ति।
अक्खाणं यं मणिकोशो य रयणचूडो य ललियपओ॥ पृ० १२.

७. पुण्यविजयजी की भूमिका, पृ० ७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) **आख्यानमणिकोश**[1]—यह ग्रन्थ वास्तव में आख्यानों का कोश है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल वि० सं० ११२९ के पूर्व है। कुल ग्रन्थ ५२ गाथाओं में ही लिखा गया है।

इस ग्रन्थ में ४१ अधिकार एवं १४६ आख्यानों का निर्देश ग्रन्थकार ने किया है पर कहीं-कहीं पुनरावृत्ति भी की गयी है। इसलिए वास्तविक संख्या १२७ हो जाती है।

वृत्तिकार की संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की पटुता ज्ञात होती है। आख्यानमणिकोश में चतुर्विध बुद्धि वर्णन अधिकार में भरत नैमित्तिक अभय के आख्यान, दान स्वरूप वर्णन अधिकार में वन्दना, मूलदेव, नागश्री ब्राह्मणी के आख्यान हैं। शील माहात्म्य वर्णन अधिकार में दमयन्ती, सीता, रोहिणी आदि के आख्यान हैं। इस प्रकार विभिन्न आख्यानों का वर्णन मिलता है तथा कुछ आख्यान विस्तृत रूप से इन्हीं के दूसरे ग्रन्थों में मिलते हैं जैसे बकुलाख्यान रयणचूडचरियं मिलता है।

उत्तराध्ययन की सुखबोधा टीका—आचार्य नेमिचन्द्रसूरि ने इसे वि० सं० ११२९ में अणहिलपाटन नगर में पूरी की है। इस टीका में छोटी-बड़ी सभी मिलाकर लगभग १२५ प्राकृत कथाएँ वर्णित हैं। इन कथाओं में रोमांस परम्परा-प्रचलित मनोरंजक वृत्तान्त, जीव-जन्तु कथाएँ, जैन साधु के आचार का महत्त्व प्रतिपादन करने वाली कथाएँ, नीति उपदेशात्मक कथाएँ एवं ऐसी कथाएँ भी गुम्फित हैं, जिनमें किसी राजकुमारी का वानरी बन जाना, किसी राजकुमार को हाथी द्वारा जंगल में भगाकर ले जाना ऐसी दोनों प्रकार कथाएँ इन्हीं की रचना रयणचूडचरियं में मिलती है। इस प्रकार विभिन्न परिषदों के उदाहरण के लिए विभिन्न कथाओं को गुम्फित किया गया है।

उत्तराध्ययन की सुखबोधा वृत्ति शान्त्याचार्य विहित शिष्यहिता नामक बृहद्वृत्ति के आधार पर बनाई गयी हैं। उसके सरल एवं सुबोध होने के कारण इसका नाम सुखबोधा रखा गया है। वृत्ति का रचना स्थान अणहिलपाटन नगर (दोहडि सेठ का घर) है। यह वृत्ति १३००० श्लोक प्रमाण है।

अनन्तनाथचरियं[2]—इसके रचयिता आम्रदेव के शिष्य नेमिचन्द्रसूरि हैं। इस ग्रन्थ की रचना सं० १२१६ के लगभग की है। सम्भवतः यह आख्यानमणिकोश, महावीरचरियं (सं० ११४१) के बाद में लिखी गयी है। ग्रन्थ में १२००० गाथाएँ हैं। इसमें १४वें तीर्थंकर का चरित्र वर्णित है। ग्रन्थकार ने इससे भव्य जनों के लाभार्थ भक्ति और पूजा का माहात्म्य विशेष रूप से दिया है। इसमें पूजाष्टक उद्धृत किया गया है, जिसमें कुसुमपूजा आदि का उदाहरण देते हुए जिनपूजा को पापहरण करने वाली, कल्याण का भण्डार एवं दारिद्र्य को दूर करने वाली कहा है। इसमें पूजा प्रकाश या पूजा विधान भी दिया गया है जो संघाचारभाष्य, श्राद्धदिनकृत्य आदि से उद्धृत किया गया है।

रयणचूडचरियं[3]—यह गद्य-पद्यात्मक प्राकृत भाषा का ग्रन्थ है। नेमिचन्द्रसूरि ने गणि पद की प्राप्ति के बाद ही इसे लिखा है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि वि० सं० ११२९ के बाद ही उन्होंने गणि पद प्राप्त किया था उसके बाद ही इस ग्रन्थ का निर्माण किया है।

इसे रत्नचूडकथा या तिलकसुन्दरी रत्नचूड़ कथानक भी कहते हैं। यह एक लोक कथा है जिसका सम्बन्ध देव-पूजादि फल प्रतिपादन के साथ जोड़ा गया है। कथा तीन भागों में विभक्त है—१. रत्नचूड़ का पूर्वभव, २. जन्म,

---

१. (अ) प्राकृत साहित्य का इतिहास, डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, पृ० ४४५, १९६१ ई०
(ब) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-३, डॉ० मोहनलाल मेहता, पी० वी० शोध संस्थान, वाराणसी, १९६९, पृ० ४४७-४८.

२. जिनरत्न कोश, पृ० ३५८

३. रयणचूडचरियं—सम्पादक विजयकुमुदसूरि, श्री तपागच्छ जैन संघ, खंभात १९४२ ई० में प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथी को वश करने के लिए जाना एवं तिलकसुन्दरी के साथ विवाह, ३. रत्नचूड़ का सपरिवार मेरु गमन एवं देश व्रत स्वीकार।

पूर्वजन्म में कंचनपुर के बकूल माली ने ऋषभदेव भगवान को पुष्प चढ़ाने के फलस्वरूप गजपुर के कमलसेन नृप के पुत्र रत्नचूड़ के रूप में जन्म ग्रहण किया। युवा होने पर मन्दोन्मत्त हाथी का दमन किया किन्तु हाथी रूपधारी विद्याधर ने उसका अपहरण कर जंगल में डाल दिया। इसके बाद वह नाना देशों में घूमता हुआ अनेक अनुभव प्राप्त करता है, पाँच राजकन्याओं से विवाह करता है, अनेक ऋद्धि विद्याएँ भी सिद्ध करता है, तत्पश्चात् पत्नियों के साथ राजधानी लौटकर बहुत काल तक राज्य वैभव भोगता है। फिर धार्मिक जीवन बिताकर मोक्ष प्राप्त करता है।

महावीरचरियं[1]—नेमिचन्द्रसूरि कृत पद्यबद्ध महावीरचरियं का रचना काल वि० सं० ११४१ है। यह ग्रन्थ पाटण में दोहडि सेठ के द्वारा निर्मित स्थान में लिखा गया है। इसमें २३८५ पद्य हैं। ३००० ग्रन्थाग्र प्रमाण है।

इसका प्रारम्भ महावीर के २६वें भव पूर्व में भगवान ऋषभ के पौत्र मरीचि के पूर्वजन्म में एक धार्मिक श्रावक की कथा से होता है। उसने एक आचार्य से आत्मशोधन के लिए अहिंसाव्रत धारण कर अपना जीवन सुधारा और आयु के अन्त में भरत चक्रवर्ती का पुत्र मरीचि नाम से हुआ। एक समय भरत चक्रवर्ती ने भगवान ऋषभ के समवशरण में आगामी महापुरुषों के सम्बन्ध में उनका जीवन परिचय सुनते हुए पूछा—भगवन्! तीर्थंकर कौन-कौन होंगे? क्या हमारे वंश में भी कोई तीर्थंकर होगा? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान ऋषभ ने बतलाया कि इक्ष्वाकुवंश में मरीचि अन्तिम तीर्थंकर का पद प्राप्त करेगा। भगवान की इस भविष्यवाणी को अपने सम्बन्ध में सुनकर मरीचि प्रसन्नता से नाचने लगा और अहंभाव से तथा सम्यक्त्व की उपेक्षा कर तपभ्रष्ट हो मिथ्यामत का प्रचार करने लगा। इसके फलस्वरूप वह अनेक जन्मों में भटकता फिरा।

महत्त्व—उपर्युक्त पाँचों रचनाओं का सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्त्व है। इन रचनाओं में समुद्रयात्रा, नाव का टूट जाना, विभिन्न द्वीपों के नाम जैसे कठाह द्वीप; मंत्र-तन्त्र, रिद्धि-सिद्धि एवं विभिन्न विद्याओं को सिद्ध करने का वर्णन मिलता है जैसे स्तम्भिनी, तालोद्घाटिनी, उड़ाकर ले जाने वाली, वैतालिक विद्या आदि; नगर, चैत्य, पर्वत, ऋतुओं के सुन्दर वर्णन इन ग्रन्थों में मिलते हैं।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं देशी शब्दों का इन ग्रन्थों के आधार पर सघन अध्ययन किया जा सकता है।

इन ग्रन्थों में कथानक रूढ़ियों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग मिलते हैं। एक कथा में अनेक अवान्तर कथाओं के जाल बिछे हुए हैं जो मुख्य कथानक की पुष्टि करते हैं।

भाषा, शैली एवं अलंकृत काव्यात्मक वर्णन इन ग्रन्थों की सुन्दरता में चार चाँद लगाते हैं। ये छन्दोबद्ध एवं अलंकृत वर्णन कथा के विकास में कहीं भी बाधा पैदा नहीं करते हैं। इनमें नीति एवं उपदेशात्मक कथाएँ भी हैं। रयणचूडचरियं का इसी दृष्टिकोण से प्रस्तुत लेखक द्वारा अध्ययन व सम्पादन कार्य किया जा रहा है। इससे श्री नेमिचन्द्रसूरि (देवेन्द्रगणि) के व्यक्तित्व एवं ग्रन्थों पर नया प्रकाश पड़ सकता है।

□

१. महावीरचरियं, सम्पादित मुनि श्री चतुरविजयजी, आत्मानन्द सभा भावनगर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org